©

96

भारत का विधि आयोग

सत्यमेव जयते

छियानवीं रिपोर्ट

कतिपय अप्रचलित केन्द्रीय अधिनियमों का निरसन

मार्च, 1984

मूल्य : (देश में) रु० 29.50 पैसे (विदेश में) पौ० 3.44 डा० 10.62

भारत के विधि आयोग की 19 मार्च, 1984 को प्रकाशित छियानवीं रिपोर्ट का शुद्धिपत्र

पृष्ठ सं०	पैरा	पंक्ति सं०	के स्थान पर	पढ़ें
1	1.2	8	काननू-पुस्तक	कानून-पुस्तक
2	1.5	1	विधार्थी	विद्यार्थी
3	2.2(दूसरा पैरा I.1.)	3	सम बीतने	समय बीतने
6	2.5, अध्याय 3, 2, अन्तिम पैरा	1	के करने कारण——	करने के कारण——
12	10	3	स्थानी	स्थानीय
12	10	9	"12क	"2क
12	12	2	काजिर्थी	काजियों
13	12	20	विच्द्देद	विच्छेद
14	16	9	का रजिस्ट्रीकरण	के रजिस्ट्रीकरण
15	17	38	तिसंघन	अतिलंघन
20	5.1	4	अधिनियमों	अधिनियमों
22	—	9	पी०एम० बक्षी	पी०एम० बख्शी

पृष्ठ
1—2
3—4
4
19
20

विषय सूची

पृष्ठ

अध्याय 1—प्रस्तावना	1—2
अध्याय 2—अधिनियमों के निरसन की सिफारिश करने में अनुसरित सिद्धांत .	3—4
अध्याय 3—विनिर्दिष्ट केन्द्रीय अधिनियम जिनके बारे में विचार किया गया .	4
अध्याय 4—कार्य-पत्र पर प्राप्त टिप्पणियां	19
अध्याय 5—निष्कर्ष और सिफारिशों का सारांश	20

1—5 M of LJ & CA/ND/84

अध्याय 1

प्रस्तावना

कतिपय अप्रचलित केन्द्रीय अधिनियमों का निरसन

प्रविषय।

1.1 यह रिपोर्ट कतिपय ऐसे केन्द्रीय अधिनियमों के निरसन की आवश्यकता के संबंध में है जो या तो पश्चात्वर्ती विधान की दृष्टि से अप्रचलित हो गए हैं या बदली हुई परिस्थितियों के कारण असंगत हो गए हैं और इसलिए जिनके निरसन की आवश्यकता है। विधि आयोग ने इस विषय पर स्वप्रेरणा से विचार किया है। इस विषय पर विचार करने के कारण इसमें आगे बताई गई बातों से स्पष्ट हो जाएंगे।

अधिनियमित विधि का समय-समय पर पुनरीक्षण और निरसन।

1.2 प्रत्येक विधानमंडल से यह अपेक्षित है कि वह अपनी अधिनियमित विधियों का समय-समय पर इस दृष्टि से पुनरीक्षण करे कि जो विधियां अप्रचलित हो गई हैं वे हटा दी जाएं तथा नागरिकों को उन विधियों पर ध्यान देने की असुविधा न हो जो विद्यमान परिस्थितियों को देखते हुए किसी प्रकार से सुसंगत नहीं रह गई हैं। इस प्रक्रिया का स्वयं अपना महत्व है और आधुनिक काल में जब अधिनियमित विधियों का अम्बार और महत्व बढ़ता जा रहा है, इस प्रक्रिया का महत्व और अधिक हो जाता है। जो कानून अप्रचलित नहीं है उनका आकार और उनकी संख्या काफी अधिक है। इस दृष्टि से कि कानून-पुस्तक का आकार बेइन्तहा न बढ़ जाए, यह वांछनीय है कि अप्रचलित कानूनों को कानून-पुस्तक से हटा दिया जाए।

अप्रचलित अधिनियमों के निरसन की आवश्यकता।

1.3 इस प्रक्रम पर यह उल्लेखनीय है कि कोई भी अधिनियम केवल अप्रयोग या अप्रचलन द्वारा अप्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। किसी विधि के बहुत लम्बे समय तक अप्रचलित रहने का यह अर्थ नहीं हो जाता है कि वह निरसित हो गई है[1]। ऐसे अधिनियमों को जो अप्रचलित या गतप्रयोग हो गए हों, अभिव्यक्त रूप से निरसित करने के लिए समय-समय पर उपाय करने का यह भी एक कारण है। इसके अतिरिक्त, ऐसे अधिनियमों को बनाए रखने से कानून-पुस्तक में अव्यवस्था सी हो जाती है और उन लोगों के मन में एक प्रकार का भ्रम सा उत्पन्न हो जाता है जिन्हें कानून-पुस्तक को देखने का मौका पड़ता है। इसी कारण से, जैसा कि ऊपर बताया गया है[2], अधिकतर देश अपनी विधियों का समय-समय पर इस दृष्टि से पुनरीक्षण करते हैं कि कानून-पुस्तक में ऐसी विधियां न रह जाएं जो अप्रचलित, असंवैधानिक या गतप्रयोग हैं[3]।

अधिनियमित विधि के पुनरीक्षण का कृत्य।

1.4 कानून-पुस्तक का पुनरीक्षण करने के लिए की गई कार्रवाई को पारंपरिक रूप से "अधिनियमित विधि का पुनरीक्षण" कहा जाता है। अधिनियमित विधि के पुनरीक्षण के कृत्य की शास्त्रीय व्याख्या लार्ड चांसलर लार्ड वेस्टबरी ने 1863 में उन सिद्धांतों का जिन पर अधिनियमित विधि का पुनरीक्षण आधारित होना चाहिए, उल्लेख इस प्रकार किया है[4]:

> कानून-पुस्तक का पुनरीक्षण और ऐसे सभी अधिनियमों को जो अब प्रवृत्त नहीं हैं, उसमें से निकाल कर तथा बाकी बचे अधिनियमों का उचित शीर्षों के अधीन क्रमबद्ध और वर्गीकृत करके, इधर-उधर बिखरे हुए कानूनों को एक साथ लाकर, खटकने वाले और विसंगत उपबंधों को निकाल कर तथा इस प्रकार असंगत और परस्पर विरोधी अधिनियमों की अव्यवस्था की बजाय एक सुव्यवस्थित रूप देकर उसका परिशोधन किया जाना चाहिए।

---

1. पेरिन बनाम यूनाइटेड स्टेट्स (1914) 58 लायर्स एडिशन 691।
2. पूर्वगामी पैरा 1.2।
3. (1930) 44 हारवर्ड ला रिव्यू में नोट, 1309।
4. लार्ड वेस्टबरी, पार्लियामेन्टरी डिबेट्स, तीसरी सीरीज, जिल्द 171, कालम 775 जिसे लार्ड साइमन आफ ग्लाएसडेल एण्ड वेब ने "कान्स्टीट्यूशन एण्ड स्टेट्यूट ला रिविजन" (1975) पब्लिक ला 285, 291 में उद्धृत किया है।

इंगलैंड में निरसन अधिनियम।

1.5 अधिनियमित विधि के विद्यार्थी निरसन और संशोधन अधिनियमों से भलीभांति परिचित हैं[1]। इंगलैंड में प्रथम स्टेट्यूट ला रिविजन ऐक्ट, 1856 में पारित हुआ था। उससे 120 अप्रचलित कानून निरसित किए गए थे[2]। यह एक विचित्र बात है कि निरसित किए गए अधिनियमों में से एक अधिनियम 1388 का एक अधिनियम (12 रिचर्ड 2, सी० 13) था जो "उन लोगों को दंडित करने के लिए था जो किसी शहर या बड़े नगर की वायु को प्रदूषित करने के लिए उसके निकट प्रदूषण कारित करते हैं[3]।"

भारत में निरसन अधिनियम।

1.6 इसी प्रकार की प्रक्रिया लगभग सभी देशों में समय-समय पर की गई है। थोड़े-थोड़े समय के बाद निरसन अधिनियमों का पुनःस्थापन और उनको आरंभ करना ऐसी प्रक्रिया है जिससे अधिकतर देशों के विधायी प्रारूपकार भलीभांति परिचित हैं। भारत में ऐसे प्रथम दो अधिनियम 1866 और 1870 में पारित हुए थे[4]। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार का अंतिम अधिनियम 1978 में पारित हुआ था[5-6]।

इस रिपोर्ट में चर्चित विभिन्न अधिनियमों को निरसित करने की आवश्यकता।

1.7 इस तथ्य के होते हुए भी कि यह प्रक्रिया समय-समय पर अपनाई गई है, अब भी भारतीय कानून-पुस्तक में कतिपय ऐसे केन्द्रीय अधिनियम मौजूद हैं जिन पर कानून-पुस्तक से अप्रचलित अधिनियमों को निकालने की दृष्टि से विचार किए जाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्ययन केन्द्रीय अधिनियम की इसी दृष्टि से समीक्षा करने का एक प्रयास है। इस प्रकार की समीक्षा विधि आयोग को सौंपे गए कृत्यों में से एक के अनुरूप है और वह है सार्वजनिक महत्व के केन्द्रीय अधिनियमों को सरल बनाना, उनमें विषमताओं, संदिग्धार्थों और अनियमितताओं को दूर करके उन्हें अद्यतन बनाना है।

विधि आयोग द्वारा जारी किया गया कार्य-पत्र।

1.8 इस प्रारंभिक अध्याय को समाप्त करने से पूर्व यह उल्लेखनीय है कि इस विषय पर जानकार व्यक्तियों की राय आमंत्रित करने के उद्देश्य से विधि आयोग ने एक कार्य-पत्र तैयार किया था जिसमें राज्य सरकारों, उच्च न्यायालयों, बार एसोसिएशनों तथा अन्य हितबद्ध व्यक्तियों और निकायों से, जिनमें भारत सरकार के विधि मंत्रालय का विधायी विभाग भी सम्मिलित है[7], यह अनुरोध किया गया था कि वे इस कार्य-पत्र पर अपने विचार भेजने की कृपा करें। आयोग को इस बात की खुशी है कि उस कार्य-पत्र पर जो विचार प्राप्त हुए हैं वे उन विभिन्न अधिनियमों के निरसन के पक्ष में हैं जिनके निरसन की सिफारिश इस रिपोर्ट में की जा रही है। प्राप्त टिप्पणियों का सारांश इस रिपोर्ट के आगे आने वाले एक अध्याय में दिया गया है[8]। आयोग उन सभी का आभारी है जिन्होंने अपने विचार भेजने का कष्ट किया है।

---

1. हाल्सबरीज लाज आफ इंगलैंड, तीसरा संस्करण, जिल्द 36, पृष्ठ 461, 476।
2. स्टेट्यूट ला रिविजन ऐक्ट, 1865 (19 और 20 विक्ट० सी० 6)।
3. लार्ड साइमन आफ ग्लाइसडेल एण्ड वेब, "कन्सालिडेशन एंड स्टेट्यूट ला रिविजन" (1975) पब्लिक ला 285, 290।
4. निरसन अधिनियम, (1866 का 11) तथा निरसन अधिनियम (1870 का 14)।
5. निरसन और संशोधन अधिनियम (1978 का 23)।
6. 1978 से पूर्व अंतिम 3 निरसन अधिनियम (1960 का 58), (1964 का 52) और (1974 का 56) थे।
7. भारत का विधि आयोग, कतिपय अप्रचलित केन्द्रीय अधिनियमों के निरसन पर कार्य-पत्र, तारीख 30 दिसम्बर, 1983।
8. आगामी अध्याय 4।

अध्याय 2

अधिनियमों के निरसन की सिफारिश करने में अनुसरित सिद्धांत

2.1 इस प्रश्न पर विचार करने में कि क्या कोई विशिष्ट अधिनियम निरसित किया जाना चाहिए या उसे कानून-पुस्तक में बने रहने देना चाहिए, हमने कुछ बातों को ध्यान में रखा है जिनका उल्लेख करना उपयोगी होगा। ध्यान में रखी गई बातें।

पहली बात तो यह है कि उन कानूनों को निरसित कर दिया जाना चाहिए जिनकी अब आवश्यकता नहीं है।

दूसरी बात, ऐसे कानून निरसित कर दिए जाने चाहिएं जिनका वस्तुतः अधिक्रमण हो गया है या जो पश्चात्वर्ती विधान के अंतर्गत आ जाते हैं।

तीसरी बात यह है कि ऐसे कानूनों पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाना चाहिए जिनका यद्यपि मौलिक अधिकारों से स्पष्ट रूप से कोई टकराव नहीं है किन्तु जो राज्यनीति के निदेशक तत्वों के विरुद्ध हैं, और इस प्रश्न की जांच पड़ताल की जानी चाहिए कि क्या उन्हें बनाए रखने के पक्ष में कोई ठोस कारण हैं।

2.2 स्टेट्यूट ला रिविजन ऐक्टों में सम्मिलित किए जाने के लिए अनुसरित किए जाने वाले सिद्धान्त विचार-विमर्श के लिए एक दिलचस्प विषय प्रदान करते हैं। इंगलैंड में, ये सिद्धांत एक ज्ञापन में बताए जाते थे जो स्टेट्यूट ला रिविजन बिलों के प्रारंभ में लगा होता था[1] इस ज्ञापन का रूप निम्नलिखित (या इससे बहुत कुछ मिलता जुलता) होता था[2] : यूनाइटेड किंगडम में स्टेट्यूट ला रिविजन के लिए सिद्धांत।

प्रथम अनुसूची का आशय, अधिनियम के अनावश्यक शब्दों के अतिरिक्त, उन अधिनियमों को जो अभिव्यक्त विनिर्दिष्ट निरसन से अन्यथा रूप में **प्रवृत्त नहीं रह गए हैं** या जो समय बीतने के साथ या अन्यथा अनावश्यक हो गए हैं तथा शीर्षक, उद्देशिका, परिवर्णन और अधिनियमन शब्दों के उन भागों को भी जिनका विधेयक के प्राधिकार के अधीन उन कानूनों के भावी संस्करणों से लोप करने का आशय है, समाविष्ट करना है, (जैसा कि विधेयक की उद्देशिका में बताया गया है)।

I. अनुसूची के प्रयोजन के लिए, छह भिन्न-भिन्न वर्गों के अधिनियमों के बारे में यह समझा जाता है कि वे प्रवृत्त नहीं रह गए हैं यद्यपि वे अभिव्यक्त रूप से और विनिर्दिष्टतः निरसित नहीं किए गए हैं, अर्थात् ऐसे अधिनियम जो:—

1. **अवसित हो गए हैं:** अर्थात् ऐसे अधिनियम जो मूलतः एक सुभिन्न उपबंध द्वारा एक विनिर्दिष्ट अवधि तक समिति रहने के लिए बनाए गए थे किन्तु जिन्हें जारी रखकर न तो कायम और न प्रवृत्त रखा गया है अथवा जिनका एकमात्र उद्देश्य समय बीतने के साथ समाप्त हुई अवधियों के लिए पूर्ववर्ती अस्थायी अधिनियमों को जारी रखना था;

2. **समाप्त हो गए हैं:** अर्थात् ऐसे अधिनियम जो प्रवृत्त रहते हुए उन प्रयोजनों के पूरा होने के कारण जिनके लिए वे पारित किए गए थे, या तो प्रथम बार प्रभावी होने के समय ही या किसी घटना के घटित होने पर या प्राधिकृत अथवा अपेक्षित किसी कार्य के लिए जाने पर समाप्त या निःशेषित हो गए हैं;

3. **सामान्यतया निरसित हो गए हैं:** अर्थात् जो ऐसे किसी अधिनियम से सुभिन्न जिसमें वे अधिनियम विनिर्दिष्ट किए गए हों जिन पर उसका प्रवर्तन होना है केवल सामान्य शब्दों में अभिव्यक्त किसी अधिनियम के प्रवर्तन से निरसित हो गए हैं;

---

1. उदाहरण के लिए देखिए स्टेट्यूट ला रिविजन ऐक्ट, 1908, 1927, 1948, 1950 और 1953 (इंगलैंड)।
2. क्रेज, स्टेट्यूट ला (1963), पृष्ठ 356, 357।

4. **वस्तुतः निरसित हो गए हैं :** जहां कोई पूर्वतर अधिनियम किसी पश्चात्वर्ती अधिनियम से असंगत है या उसके द्वारा निरर्थक हो जाता है;

5. **अधिक्रांत हो गया है :** जहां कोई पश्चात्वर्ती अधिनियम उन्हीं प्रयोजनों के लिए जिनके लिए कोई पूर्वतर अधिनियम बनाया गया था, पूर्वतर अधिनियम के पदों की पुनरावृत्ति द्वारा या अन्यथा पारित किया जाता है;

6. **अप्रचलित हो गया है :** जहां अधिनियम में सोची गई परिस्थितियां अस्तित्व में नहीं रह गई हैं या अधिनियम ऐसी प्रकृति का है कि राजनीतिक या सामाजिक परिस्थितियों में हुए परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए उसे अब प्रवृत्त नहीं किया जा सकता है।

II. अनुसूची के प्रयोजन के लिए, अधिनियमों को वहां अनावश्यक समझा जाता है जहां उपबंध इस प्रकृति के हैं कि आजकल कानूनी प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है।

जहां कोई अधिनियम ऐसे किसी कारण से जिसका उल्लेख ऊपर नहीं किया गया है, अनुसूचियों में समाविष्ट किया गया है वहां विधेयक की अनुसूची के तृतीय स्तंभ में प्रयुक्त अभिव्यक्ति से, जो ऐसा विषय है जिस पर न्यायालयों द्वारा विचार नहीं किया जाएगा निरसन का आधार पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है।

प्रस्तावों का संघ या समवर्ती सूची के विषयों तक सीमित होना।

2.3 पुनः भारत पर ध्यान देते हुए हम यहां यह बता देना चाहते हैं कि निरसित किए जाने वाले अधिनियमों की सूची तैयार करने में हमने उन अधिनियमों को छोड़ दिया है जिनकी विषय-वस्तु स्पष्ट रूप से संविधान, सप्तम् अनुसूची, राज्य सूची के अंतर्गत आती है। संघ सूची या समवर्ती सूची के अंतर्गत आने वाले विषयों से संबंधित अधिनियमों के संबंध में भी कुछ को कतिपय विशेष कारणों से छोड़ दिया गया है, जिनका उल्लेख उपयुक्त स्थान पर किया जाएगा।

हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856।

2.4 एक केन्द्रीय अधिनियम अर्थात् हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 के बारे में कुछ विशेष बातें बताना आवश्यक है। यह एक ऐसा अधिनियम है जिस पर विधि आयोग पहले ही एक रिपोर्ट दे चुका है[1]। आयोग ने विभिन्न सुसंगत केन्द्रीय अधिनियमों पर विस्तार से विचार करने के पश्चात् इस विषय पर अपनी रिपोर्ट में 1857 के अधिनियम के निरसन की सिफारिश की थी। अब उस रिपोर्ट को क्रियान्वित किया गया है। अतः उस अधिनियम पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

संपरिवर्ती विवाह विघटन अधिनियम, 1866।

2.5 संपरिवर्ती विवाह विघटन अधिनियम, 1866 भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस अधिनियम पर भी विधि आयोग बहुत पहले एक रिपोर्ट सरकार को भेज चुका है जिसमें इस अधिनियम के स्थान पर एक नया अधिनियम बनाने की विस्तृत सिफारिशें की गई हैं[2]। इस रिपोर्ट को भी अभी क्रियान्वित किया जाना है। सिफारिश के लिए कारण इस रिपोर्ट में विस्तार से बताए गए हैं। ऐसे विभिन्न अधिनियमों की जिन पर निरसन के लिए विचार किए जाने की आवश्यकता है प्रगणना करते समय हमने उस अधिनियम का उल्लेख करना अनावश्यक समझा है[3]।

अध्याय 3

विनिर्दिष्ट केन्द्रीय अधिनियम जिन पर विचार किया गया

अब समय आ गया है कि हम विनिर्दिष्ट केन्द्रीय अधिनियमों की अपनी समीक्षा के परिणामों का उल्लेख करें। आगामी कुछ पैराओं में हम न केवल उन केन्द्रीय अधिनियमों की चर्चा करेंगे जिनके संबंध में हमारी समीक्षा के परिणामस्वरूप यह प्रतीत होता है कि उनका

1. भारत का विधि आयोग, 81वीं रिपोर्ट (हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856)।
2. भारत का विधि आयोग 18वीं रिपोर्ट (संपरिवर्ती विवाह विघटन अधिनियम, 1866)।
3. आगामी अध्याय 3।

निरसन किया जाना चाहिए बल्कि हम कुछ अन्य केन्द्रीय अधिनियमों की भी चर्चा करेंगे जो प्रथमदृष्ट्या निरसन के लिए उपयुक्त प्रतीत हो सकते हैं किन्तु जिनका निरसन करने से कुछ कठिनाईयां उत्पन्न हो सकती हैं। इन कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए उनको निरसित करने की सिफारिश नहीं की जा सकती है। फिर भी, हमें ऐसे अधिनियमों के संबंध में, उनके निरसन की सिफारिश न करने के कारण बताते हुए अपने निष्कर्ष, (यद्यपि वे नकारात्मक हैं) लेखबद्ध करना वांछनीय प्रतीत हुआ है। तदनुसार इस अध्याय के आगे आने वाले पैराओं में न केवल उन केन्द्रीय अधिनियमों की चर्चा की गई है जिनके निरसन की सिफारिश की गई है बल्कि कुछ अन्य ऐसे केन्द्रीय अधिनियमों की चर्चा भी की गई है जिनके निरसन की सिफारिश नहीं की गई है किन्तु जिनकी समीक्षा प्रस्तुत रिपोर्ट के प्रयोजन के लिए की गई है[1]।

1. **प्रिवी काउंसिल अधिकारिता उत्सादन अधिनियम, 1949**

इस अधिनियम में प्रिवी काउंसिल की अपील अधिकारिता के उत्सादन और सम्बद्ध विषयों के लिए उपबन्ध है। यह 1949 का संविधान सभा अधिनियम 5 के रूप में पारित हुआ था। प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम की अब कोई उपयोगिता न होने के कारण यह अब निरसित कर दिया जाना चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 395 भारत स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 और भारत शासन अधिनियम, 1947 तथा भारत शासन अधिनियम, 1935 को और इन अधिनियमों के अनुपूरक अधिनियमों को निरसित करता है किन्तु उसके साथ ही अपने प्रविषय से प्रिवी काउंसिल अधिकारिता अधिनियम, 1949 को अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित करता है। कदाचित उस समय ऐसा इसलिए किया गया था क्योंकि संविधान के प्रारंभ से पूर्व प्रिवी काउंसिल के समक्ष फाइल की गई अपीलें (जो कुछ मामलों में अधिनियम की धारा 4 द्वारा प्रिवी काउंसिल के समक्ष बनी रहने दी गई थीं) प्रिवी काउंसिल के समक्ष लम्बित रही होंगी और उन लम्बित अपीलों के निपटाए जाने तक उक्त अधिनियम को निरसित करना उचित नहीं समझा गया था। अब यह स्थिति नहीं है। अधिनियम को समाप्त हुआ समझा जा सकता है।

इस अधिनियम की विषय-वस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 11क (न्याय प्रशासन) और अवशिष्ट प्रविष्टि के अन्तर्गत आती है।

निरसन की सिफारिश करने के कारण—इस अधिनियम की अब कोई आवश्यकता नहीं है इसलिए इसे आगामी दो वाक्यों में जो कुछ कहा गया है उसके अधीन रहते हुए निरसित किया जा सकता है।

इस अधिनियम को निरसित करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि इसके निरसन से युनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट के किसी ऐसे ऐक्ट द्वारा प्रिवी काउंसिल को प्रदत्त अधिकारिता पुनरुज्जीवित न हो जाए जो स्वाधीनता के पश्चात् औपचारिक रूप से अभी तक निरसित न किया हो। इस संदर्भ में विशेष रूप से (क) यू० के० पार्लियामेंट द्वारा 1830 और 1850 के बीच पारित जुडिशियल कमेटी से संबंधित अधिनियमों[2] पर विचार करना होगा, और (ख) इस बात पर विचार और इसकी समीक्षा करनी होगी कि क्या ये अधिनियम 1960 के केन्द्रीय अधिनियम[3] द्वारा, जो यू० के० के कुछ ऐक्टों को निरसित करने के लिए अधिनियमित किया गया था,[4] निरसित तो नहीं किए जा चुके हैं।

---

1. अधिनियमों की चर्चा अंग्रेजी के वर्ण क्रमानुसार की गई है।
2. देखिए भारत का विधि आयोग, 5वीं रिपोर्ट (भारत को लागू ब्रिटिश कानून)।
3. ब्रिटिश कानून (भारत को लागू होना) अधिनियम, 1960 (1960 का 58)।
4. अधिनियम के पाठ के पैरा में वर्णित बातों की सही स्थिति का पता लगाने के बाद निरसन के प्रश्न पर विचार किया जाएगा।

2. विधिक कार्यवाहियों का चालू रह जाना अधिनियम, 1948 (1948 का 38)

यह अधिनियम (नवसृजित) भारत डोमीनियन या (नवसृजित) प्रान्तों के विरुद्ध कतिपय कार्यवाहियों के चालू रहने को प्राधिकृत करता है।

भारतीय स्वतंत्रता (अधिकार, सम्पत्ति और दायित्व) आदेश, 1947 के पैरा 12 (3) में "नियत दिन" (15 अगस्त, 1947) के पश्चात् सरकार के विरुद्ध विधिक कार्यवाहियों के चालू रहने के लिए उपबंध किया गया था किन्तु यह केवल अविभाजित भारत या उसके किसी भाग के संबंध में था। इस पैरा के अन्तर्गत अविभाजित भारत के किसी अधिकार के बारे में कार्यवाहियां नहीं आतीं। इस दोष को दूर करने के लिए 1948 का अध्यादेश 12 प्रख्यापित किया गया था। यह अधिनियम उसी अध्यादेश का स्थान लेता है।

अधिनियम की धारा 3 को उद्धृत करना ही पर्याप्त है, जिसमें निम्नलिखित उपबन्ध हैं :—

"3. ऐसी विधिक कार्यवाहियां जो नियत दिन से पहले–

(क) उन राज्यक्षेत्रों के अन्दर, जो नियत दिन से भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 (10 और 11 जार्ज VI सी 30) की धारा 2 की उपधारा (1) के आधार पर भारत के राज्यक्षेत्र बनाए गए हैं, किसी न्यायालय में सेक्रेटरी आफ स्टेट द्वारा या उसके विरुद्ध लम्बित थीं ;

(ख) भारत के या भारत के किसी भाग के किसी अधिकार के बारे में थी—

(i) यदि प्रश्नगत अधिकार सपरिषद् गवर्नर जनरल का अधिकार था तो भारत डोमीनियन द्वारा या उसके विरुद्ध चालू रखी जाएगी,

(ii) यदि प्रश्नगत अधिकार पूर्ववर्ती बंगाल या पंजाब प्रांत का अधिकार था तो, यथास्थिति, पश्चिमी बंगाल या पूर्वी पंजाब प्रांत द्वारा या उसके विरुद्ध चालू रखी जाएंगी, और

(iii) यदि प्रश्नगत अधिकार बंगाल, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत या सिंध से भिन्न किसी गवर्नर के प्रांत का अधिकार था तो उस प्रांत द्वारा या उसके विरुद्ध चालू रखी जाएंगी।"।

यह विषय समवर्ती अनुसूची प्रविष्टि 13 (सिविल प्रक्रिया) के अन्तर्गत आता है।

निरसन की सिफ़ारिश के करने कारण—वे कार्यवाहियां जिनको अधिनियम की धारा 3 (उसका प्रभावी भाग) लागू होती है, अब तक निपटा दी गई होगी। इस संबंध में वास्तविक स्थिति का पता लगाने के बाद इस अधिनियम को यह मानकर निरसित कर दिया जाना चाहिए कि यह समाप्त हो गया है[1]।

3. बन्दी आदान-प्रदान अधिनियम, 1948 (1948 का 58)

बन्दी आदान-प्रदान अधिनियम, 1948 में पाकिस्तान के साथ किसी करार के अनुसरण में पाकिस्तान से भारत को और भारत से पाकिस्तान को बन्दियों के अन्तरण का उपबन्ध है[2]। यह अधिनियम, विभाजन से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए पारित किया गया था।

अधिनियम का मुख्य उद्देश्य धारा 3 में और धारा 2 (घ) में "अन्तरणीय बन्दी" पद की परिभाषा में समाविष्ट है।

---

1. सही स्थिति का पता लगाने के पश्चात्।
2. पूरा नाम और उद्देशिका देखिए।

परिभाषा इस प्रकार है :—

"2 (घ)" "अन्तरणीय बन्दी से"—

(i) पूर्वी पंजाब प्रांत में, ऐसा बन्दी अभिप्रेत है जो मुसलमान हो और इस बात के लिए रजामन्द हो कि इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन उसका अन्तरण पाकिस्तान को कर दिया जाए, और

(ii) भारत के किसी अन्य भाग में, उस प्रवर्ग का कोई बन्दी अभिप्रेत है जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे और जो मुसलमान हो और इस बात के लिए राजमन्द हो कि इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन उसका अन्तरण पाकिस्तान को कर दिया जाए।"

धारा 3 अन्तरणीय बन्दियों के अन्तरण के लिए वारंट जारी करने की शक्ति राज्य सरकार को प्रदान करती है। धारा 4 से धारा 7 तक, ऐसे वारंट के संबंध में उपबन्ध हैं। धारा 8 किसी अन्तरित बन्दी की, केन्द्रीय सरकार की लिखित अनुज्ञा के बिना, भारत में वापसी को प्रतिषिद्ध करती है। धारा 9 में पाकिस्तान से अन्तरित बन्दियों के भारत में ग्रहण किए जाने का उपबन्ध है[1]।

इस अधिनियम की विषय-वस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 10 (विदेश कार्य) और संघ सूची, प्रविष्टि 14 (विदेशों के साथ संधियां करना और उनका क्रियान्वयन) के अन्तर्गत आती है।

निरसन की शिफारिश करने के कारण—यद्यपि अधिनियम की शब्द् रचना ऐसी है कि यह विभाजन की कालावधि के बाद भी प्रवर्तन में रहता है किन्तु विधान मण्डल का आशय यह नहीं था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह अधिनियम विभाजन के तुरन्त बाद उत्पन्न हुई परिस्थिति से निपटने के लिए ही पारित किया गया था, इसे अब इस प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् कि क्या वास्तव में इसकी वर्तमान काल में कोई आवश्यकता है, निरसित किया जा सकता है[2]।

4. फेडरल न्यायालय अधिनियम, 1937 (1937 का 25)

यह अधिनियम तत्कालीन फेडरल न्यायालय से संबंधित कतिपय विषयों के बारे में है। यह सम्पूर्ण अधिनियम इस प्रकार है:

"फेडरल न्यायालय द्वारा जारी की गई आदेशिकाओं की तामील को विनियमित करने के लिए नियम बनाने के निमित्त उस न्यायालय को सशक्त करने के लिए अधिनियम। फेडरल न्यायालय को ऐसी अनुपूरक शक्ति प्रदान करना समीचीन है जो भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा या उसके अधीन, उस न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता का और अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग करने के लिए उस समर्थ बनाने के प्रयोजनार्थ आवश्यक है, अतः इसके द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :

1. इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम फेडरल न्यायालय अधिनियम, 1937 है। — संक्षिप्त नाम.

2. फेडरल न्यायालय अपने द्वारा जारी की गई आदेशिकाओं की तामील को विनियमित करने के लिए नियम बना सकेगा जिनके अन्तर्गत किसी उच्च न्यायालय से, जिससे कोई अपील फेडरल न्यायालय को की गई है, उस अपील के संबंध में फेडरल न्यायालय द्वारा जारी की गई किसी आदेशिका को तामील कराने की अपेक्षा करने वाले नियम भी हैं।" — नियम बनाने की फेडरल न्यायालय की शक्ति।

इस अधिनियम की विषय-वस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 11क "न्याय प्रशासन" और संघ सूची, प्रविष्टि 97 (अवशिष्ट) के अन्तर्गत आती है।

---

1. उद्देश्यों और कारणों का कथन देखिए, भारत का राजपत्र, भाग 5, 4 सितम्बर, 1948।
2. सही स्थिति का पता लगाने के पश्चात्।

निरसन की सिफारिश करने के कारण––फेडरल न्यायालय का अस्तित्व बहुत पहले समाप्त हो चुका है। अतः इस अधिनियम को पूर्ण रूप से समाप्त हुआ समझ कर इसे निरसित कर दिया जाना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि फेडरल न्यायालय अधिनियम, 1941 (1941 का 21) जिसमें फेडरल न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई थी, 1952 के अधिनियम 48 द्वारा निरसित किया जा चुका है। फेडरल न्यायालय अनुपूरक अधिनियम, 1942 (1942 का 26) भी, जिसमें रजिस्ट्रार को फेडरल न्यायालय की कतिपय शक्तियों के प्रत्यायोजन को प्राधिकृत किया गया था, 1952 के अधिनियम 48 द्वारा निरसित कर दिया गया था।

5. फैडरल न्यायालय (अपील अधिकारिता वृद्धि) अधिनियम, 1947 (1948 का 1)

यह अधिनियम भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 206 के अधीन अनुज्ञेय पूरे विस्तार तक फेडरल न्यायालय की अपील अधिकारिता में वृद्धि करता है।

अधिनियम की धारा 3 इस प्रकार है––

"3. नियत दिन से––

(क) किसी ऐसे निर्णय से जिसको यह अधिनियम लागू होता है, फेडरल न्यायालय को अपील होगी :––

(i) फेडरल न्यायालय की विशेष इजाजत के बिना, यदि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 या नियत दिन से ठीक पहले प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अधीन विशेष इजाजत के बिना सपरिषद् हिज मेजेस्टी से अपील की जा सकती थी, और

(ii) किसी और अन्य दशा में, फेडरल न्यायालय की विशेष इजाजत से;

(ख) यथापूर्वोक्त किसी अपील में फेडरल न्यायालय भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 205 की उपधारा (1) में जो उल्लिखित है उस प्रकार के प्रश्न पर विचार करने के लिए सक्षम होगा; और

(ग) ऐसे किसी निर्णय से या तो विशेष इजाजत से या उसके बिना, सपरिषद् हिज मेजेस्टी को कोई सीधी अपील नहीं होगी।"

अधिनियम की विषय-वस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 11क "न्याय प्रशासन" और संघ सूची, प्रविष्टि 97 (अवशिष्टीय प्रविष्टि) के अंतर्गत आती है।

निरसन की सिफारिश करने के कारण––फेडरल न्यायालय का अस्तित्व बहुत पहले समाप्त हो चुका है। लम्बित अपीलें उच्चतम न्यायालय को अन्तरित कर दी गई थीं और अब तक वे सभी निपटाई जा चुकी होंगी। अतः इस अधिनियम को समाप्त हो गए अधिनियम के रूप में निरसित कर दिया जाना चाहिए।

6. गोवा, दमण और दीव (मत संग्रह) अधिनियम, 1966 (1966 का 38)

इस अधिनियम में गोवा, दमण और द्वीव राज्यक्षेत्र के निर्वाचकों के उस राज्यक्षेत्र की भावी प्रास्थिति के प्रश्न पर विचार अभिनिश्चित करने के लिए उपबन्ध है। अधिनियम की विषय-वस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 97 (अवशिष्टीय प्रविष्टि) के अन्तर्गत आती है।

निर्वाचकों की राय केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्यक् रूप से अभिनिश्चित कर ली गई थी और उस राज्यक्षेत्र की संवैधानिक प्रास्थिति के बारे में आगे कार्रवाई की गई थी।

निरसन की सिफारिश करने के कारण––अधिनियम जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया गया था वह पूरा हो चुका है और अब इस अधिनियम को कानून-पुस्तक में बनाए रखने से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। अतः इसे निरसित किया जा सकता है।

7. साधारण बीमा (आपात उपबन्ध) अधिनियम, 1971 (1971 का 17)

इस अधिनियम में साधारण बीमा कारबार का प्रबंध उसका राष्ट्रीयकरण होने तक, तत्काल ग्रहण किए जाने का उपबन्ध है।

यह अधिनियम अभी तक प्रवृत्त है यद्यपि धारा 14 का लोप साधारण बीमा कारबार (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1972 (1972 का 57) द्वारा किया जा चुका था।

इस अधिनियम की विषय-वस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 47, "बीमा" के अन्तर्गत आती है।

निरसन की सिफारिश करने के कारण––साधारण बीमा कारबार का अब राष्ट्रीयकरण हो चुका है और ऐसा प्रतीत होता है कि अब इस अधिनियम की कोई उपयोगिता नहीं रह गई है। अधिनियम को बनाए रखने की आवश्यकता है या नहीं इस बारे में सही स्थिति का पता लगाने के पश्चात् इसका निरसन कर दिया जाना चाहिए[1]।

8. भारतीय स्वतंत्रता (पाकिस्तान) न्यायालय (लम्बित कार्यवाहियां) अधिनियम, 1952 (1952 का 9)

यह अधिनियम भारत और पाकिस्तान के विभाजन को दृष्टि में रखते हुए, कतिपय विधिक उपबन्ध करने के लिए पारित किया गया था।

यह अधिनियम अभी तक प्रवृत्त है यद्यपि धारा 5, निरसन और संशोधन अधिनियम, 1957 (1957 का 36) द्वारा निरसित कर दी गई थी।

अधिनियम की धारा 2 इस प्रकार है :

"2. **परिभाषा**––इस अधिनियम में डिक्री जिसको यह अधिनियम लागू होता है पद से ऐसा निर्णय या आदेश अभिप्रेत है जो निम्नलिखित में निर्दिष्ट है––

(i) भारतीय स्वतंत्रता (विधिक कार्यवाही) आदेश, 1947 के अनुच्छेद 4 के खंड (3) में, या

(ii) उच्च न्यायालय (बंगाल) आदेश, 1947 के अनुच्छेद 13 के पैरा (5) या पैरा (6) में, या

(iii) उच्च न्यायालय (पंजाब) आदेश, 1947 के अनुच्छेद 13 के पैरा (4) या पैरा (6) में,

और जो पाकिस्तान में किसी न्यायालय द्वारा पारित किया गया है या इसके पश्चात् पारित किया जाए और जो भारत की किसी सरकार पर कोई दायित्व या बाध्यता अधिरोपित करता है।"

धारा 3 इस प्रकार है :

"3. **कुछ पाकिस्तान डिक्रियों का भारत में प्रभावी होना**––धारा 2 में निर्दिष्ट आदेशों में किसी बात के होते हुए भी कोई डिक्री जिसको यह अधिनियम लागू होता है, भारत में किसी न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा प्रभावी नहीं की जाएगी जहां तक ऐसी डिक्री भारत की किसी सरकार पर कोई दायित्व या बाध्यता अधिरोपित करती है।"

प्रश्नगत कार्यवाहियों को अन्यथा लागू विधि में, अर्थात् :––

(i) परिसीमा विधि; और

---

1. सही स्थिति का पता लगाने के पश्चात्।

(ii) न्यायालय विनियमन विधि;

में अधिनियम की धारा 4 द्वारा दो उपांतर किए गए हैं। जहां तक परिसीमा का प्रश्न है, धारा 4 अधिनियम के प्रारंभ की तारीख या डिक्री की तारीख से, जो भी पश्चात् वर्ती हो, एक वर्ष की अवधि अनुज्ञात करती है।

जहां तक न्यायालय का प्रश्न है, धारा में यह उपबन्ध है कि अधिनियम द्वारा अनुज्ञात वाद, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 20 के होते हुए भी, ऐसे किसी न्यायालय में (जो अन्यथा उसका परीक्षण करने के लिए सक्षम हो) संस्थित किया जा सकता है जिसकी **अधिकारिता के भीतर वह व्यक्ति जिसने उसे संस्थित किया है, स्वेच्छया निवास करता है या कारबार करता है या अभिलाभ के लिए स्वयं काम करता है।**

ऐसा प्रतीत होता है कि उस अधिनियम की विषय-वस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 13 (सिविल प्रक्रिया——————परिसीमा) और संघ सूची, प्रविष्टि 97 (अवशिष्टीय) के अन्तर्गत आती है।

की जाने वाली कार्यवाही

प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत हो सकता है कि स्वतंत्रता के 30 वर्ष बाद अब इस चर्चित अधिनियम की कोई आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए। किन्तु पूर्ण निश्चिता से यह कहना संभव नहीं है कि ऐसा कोई वाद, जो इस अधिनियम द्वारा शासित है, वर्तमान काल में फाइल नहीं किया जा सकता है। प्रश्नगत कार्यवाहियां फाइल करने के लिए परिसीमाकाल में निर्योग्यता, कपट या अन्य विशेष बातों से वृद्धि हो सकती है। अतः इस अधिनियम को निरसित करना उचित प्रतीत नहीं होता है।

9 भारतीय निर्णय पत्रिका अधिनियम, 1875 (1875 का 18)

वस्तुतः इस अधिनियम में यह उपबन्ध है कि न्यायालय निर्णय पत्रिकाओं की किसी अप्राधिकृत सीरीज के प्रोद्धरण को सुनने के लिए आबद्ध नहीं है। यह अधिनियम ऐसा प्रथम अधिनियम है जो शासकीय निर्णय पत्रिकाओं के प्रोद्धरण को निर्बंधित करता है। इस अधिनियम में (जहां तक तात्त्विक है) यह उपबन्ध है कि कोई भी न्यायालय सरकार के प्राधिकार के अधीन प्रकाशित किसी मामले के निर्णय से भिन्न किसी निर्णय के प्रोद्धरण को सुनने के लिए आबद्ध नहीं है और न वह उसे अपने पर आबद्धकर प्रमाणिक निर्णय के रूप में लेगा या समझेगा। इस अधिनियम का, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि वह शासकीय निर्णय पत्रिकाओं के पक्ष में आंशिक एकाधिकार सृजित करने का प्रयास है[1], कड़ा विरोध किया गया था। बंगाल के तत्कालीन लेफ्टीनेंट गवर्नर सर जार्ज कैम्पबेल ने अपना विरोध इन शब्दों में व्यक्त किया था :

> यदि आप किसी एक प्राधिकारी के हाथ में यह विनिश्चय करने की शक्ति दे देते हैं कि इनमें से किसे अस्वीकार या नामंजूर किया जाना है तो आप उस प्राधिकारी को देश के वरिष्ठ न्यायालयों के ऊपर एक बहुत बड़ी शक्ति देते हैं।

अधिनियम की धारा 3 इस प्रकार है :—

> 3. किसी राज्य सरकार के प्राधिकार के अधीन प्रकाशित किसी निर्णय पत्रिका से भिन्न, किसी——————उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित किसी मामले के निर्णय को कोई न्यायालय प्रोद्धरित सुनने के लिए या अपने पर आबद्धकर प्रमाण के रूप में ग्रहण करने या मानने के लिए बाध्य नहीं होगा।

अधिनियम की धारा 4 में उपबंध है कि अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी न्यायिक विनिश्चय को उससे कोई और या भिन्न प्रमाण स्वीकार करती है जो यदि यह अधिनियम पारित न किया जाता तो उसे माना जाता।

---

1. भारत का विधि आयोग, 14वीं रिपोर्ट, न्यायिक प्रशासन का सुधार, जिल्द 1 पृष्ठ 631, पैरा 19।

यदि इस अधिनियम को शाब्दिक रूप से देखा जाए तो इससे कुछ विषमताएं सृजित हो सकती हैं। यदि कोई एकल न्यायाधीश धारा 3 का आश्रय लेकर किसी खण्ड पीठ के किसी अशासकीय विनिर्णय पर ध्यान देने से इंकार करता है तो स्थिति असंतोषप्रद होगी। एक खण्ड पीठ के विनिर्णय की अवहेलना एकल न्यायाधीश द्वारा होगी। यह ठीक है कि व्यवहारिक रूप में एकल न्यायाधीश अशासकीय सीरीज में प्रकाशित खण्ड पीठ के विनिश्चय को देखेगा या....यद्यपि ऐसा बिरले ही होता है....वह न्यायालय के अभिलेख से मूल निर्णय को देखेगा[1]। इसी से पता चलता है कि यदि गंभीर विषमताओं से बचना है तो अक्सर इस अधिनियम की अवहेलना करनी होगी।

अधिनियम की विषयवस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 11क "न्यायप्रशासन" के अन्तर्गत प्रतीत होती है। समवर्ती सूची, प्रविष्टि 39 "समाचारपत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय" के अन्तर्गत यह नहीं आएगी और न यह समवर्ती सूची, प्रविष्टि 12 "विधियों, लोक कार्यों और अभिलेखों की मान्यता और न्यायिक कार्यवाहियां" के अन्तर्गत जाएगी।

निरसन की सिफारिश करने के कारण—यह बात सभी जानते हैं कि इस अधिनियम के पारित होने के बावजूद भारत में प्रकाशित अशासकीय निर्णय-पत्रिकाएं प्रिवी काउंसिल की ज्यूडिशियल कमेटी, उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनेक वर्षों तक प्रौद्धरित की गई हैं और उन न्यायालयों ने अपने निर्णयों में इनका हवाला दिया है और उन पर निर्भर किया है। वस्तुतः इस अधिनियम का पालन कभी हुआ ही नहीं।

विधि आयोग ने न्यायिक प्रशासन में सुधार पर अपनी रिपोर्ट[2] में इस अधिनियम के बारे में यह कहा है कि :—

> 42. हमने जो सिफारिशें की हैं उनको दृष्टि में रखते हुए भारतीय निर्णय पत्रिका अधिनियम (1875 का 18) निरसित करना होगा। जैसा कि ऊपर बताया गया है कदाचित् भारतीय निर्णय पत्रिकाओं की सीरीज के प्रकाशन में विलम्ब के कारण धारा 3 का पालन न्यायालयों द्वारा नहीं किया गया है। निस्सन्देह, प्रिवी काउंसिल की ज्यूडिशियल कमेटी और उच्चतम न्यायालय सहित सभी न्यायालयों के निर्णयों में प्राइवेट सीरीज में प्रकाशित विनिश्चयों के प्रति प्रमाणिक और आबद्धकर रूप में निर्देश किया गया है। इसके अतिरिक्त, हमारी सिफारिशों में स्वयं भारतीय निर्णय पत्रिका सीरीज के प्रकाशन का बन्द किया जाना अन्तर्वलित है।

एक उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है[3] कि भारतीय निर्णय पत्रिका अधिनियम, 1875 केवल यह अभिनिश्चित करता है कि उन न्यायाधीशों को जो स्वयं विनिश्चयों को देख नहीं सकते हैं, उन विनिश्चयों की शुद्ध प्रतियां उपलब्ध कराई जाएं।

किसी विनिर्णय के प्रकाशित किए जाने मात्र से उसकी प्रमाणिकता उससे अधिक नहीं हो जाती जो किसी न्यायालय के समक्ष उसकी थी। प्रमाणित प्रति उसकी प्रमाणिकता और शुद्धता को स्थापित करती है। ऐसी प्रति प्रस्तुत किए जाने पर निचले न्यायालय उस प्रमाणित प्रति को प्रकाशित निर्णयों के समकक्ष मानने के लिए आबद्ध हैं। धारा 3 में केवल यह उपबंध है कि न्यायालय को अप्राधिकृत निर्णय पत्रिकाओं पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जो चीज बाध्य है वह उच्च न्यायालय का विनिश्चय है न कि निर्णय-पत्रिका।

प्रसंगवश यह उल्लेखनीय है कि निर्णय पत्रिका अधिनियम प्रिवी काउंसिल, फेडरल न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों को लागू नहीं होता है यद्यपि साक्ष्य अधिनियम की धारा

---

1. विनायक बनाम मोरेश्वर, ए० आई० आर० 1944, नागपुर 44 में की गई चर्चा से तुलना कीजिए।
2. भारत का विधि आयोग, 14वीं रिपोर्ट (न्यायिक प्रशासन का सुधार), जिल्द 1, पृष्ठ 645, पैरा 42।
3. तारक प्रसाद बनाम शांति लता (1975) 2 ए एल आर 501 (वह सारांश जो वार्षिक डाइजेस्ट 1976, कालम 1509 में प्रकाशित हुआ है)।

84 का दूसरा पैरा उनको लागू नहीं होता है (जैसा कि वह वरिष्ठ न्यायालयों के अन्य न्यायिक विनिश्चयों को लागू होता है)।

इन विषमताओं के कारण भी यह अधिनियम निरसित कर दिया जाना चाहिए। संसद् को ऐसा करने की विधायी क्षमता प्राप्त है[1]।

10. भारतीय राइफल्स अधिनियम, 1920 (1920 का 23)

इस अधिनियम में सेना पुलिस या राइफल्स बटालियनों में अभ्यावेशित स्थानीय पुलिस अधिकारियों के बेहतर अनुशासन का उपबंध है। इस अधिनियम द्वारा उन अधिकारियों को सेवा क्षेत्र में अर्थात् उस क्षेत्र में जिसमें वे सेवा करते हैं, लागू स्थानी अधिनियम के अधीन विहित अनुशासन और शास्तियों के अधीन रखा गया है।

इस अधिनियम की विषयवस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 1, जिसका सम्बन्ध सशस्त्र बलों से है, के अन्तर्गत आती है। संघ सूची, प्रविष्टि 2क (जो नीचे उद्धृत है) भी प्रासंगिक हो सकती हैं :

"12क. संघ के किसी सशस्त्र बल या संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल का———————————————अभिनियोजन———————"

निरसन की सिफारिश करने के कारण—अब सैनिक पुलिस या राइफल्स बटालियनों में स्थानीय पुलिस को भरती करने की परिपाटी समाप्त हो गई है। अतः यह अधिनियम अब गत प्रयोग हो गया है और निरसित कर दिया जाना चाहिए।

11. औद्योगिक विवाद (बैंककारी कम्पनियां) विनिश्चय अधिनियम, 1955 (1955 का 41)

यह अधिनियम बैंककारी कम्पनियों के कर्मचारियों के सम्बन्ध में श्रम अपील अधिकरण के अधिनिर्णय को उपांतरित करता है और (उस उपांतर के अधीन रहते हुए) अधिनिर्णय को प्रवृत्त करने के लिए उपबन्ध करता है।

इस अधिनियम की विषयवस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 45, "बैंककारी" और समवर्ती सूची, प्रविष्टि 22 "व्यापार संघ—औद्योगिक और श्रम विवाद" के अन्तर्गत आती है।

की जाने वाली कार्रवाई—उक्त अधिनिर्णय आरम्भ में 31-3-1959 तक प्रवृत्त था, किन्तु उसे आगे की एक तारीख तक के लिए बढ़ा दिया गया था। अतः इस अधिनियम को निरसित नहीं किया जा सकता है।

12. काज़ी अधिनियम, 1880 (1880 का 12)

इस अधिनियम में कुछ क्षेत्रों में अर्थात् ऐसे क्षेत्रों में जहां काजियों से रूढ़ि द्वारा यह अपेक्षित है कि वे मुसलमानों के बीच विवाह संस्कार और अन्य रस्में सम्पन्न कराएं, काजियों की नियुक्ति का उपबंध है।

अधिनियम की धारा 2 में उपबन्ध है कि जहां किसी क्षेत्र में काफी अधिक संख्या में मुसलमान रहते हैं और वे काजियों की नियुक्ति चाहते हैं वहां सरकार, निवासियों के साथ पूर्व परामर्श के पश्चात् उस क्षेत्र के लिए एक या अधिक काजियों की नियुक्ति कर सकती है। सरकार उस सम्पूर्ण क्षेत्र या उसके भाग के लिए नायब काजियों की नियुक्ति भी कर सकती है। ऐसे किसी काजी को उसके दिवालियापन, अवचार अथवा उस क्षेत्र से छह मास से अधिक समय तक अनुपस्थित रहने के कारण हटाने की शक्ति भी सरकार को प्राप्त है।

---

1. समवर्ती सूची, प्रविष्टि 11क "न्याय प्रशासन"।

धारा 4 में उपबंध है कि इन काजियों को कोई भी न्यायिक या प्रशासनिक शक्तियां प्राप्त नहीं हैं और प्रत्येक विवाह कर्म के अवसर पर उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं है। स्थानीय काजी (जिनकी इस प्रकार नियुक्ति नहीं की गई है) अपना कार्य कर सकते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय लोग यह समझते थे कि मुस्लिम विवाह के अवसर पर, सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी की उपस्थिति आवश्यक है। किन्तु एक विद्वान लेखक ने यह बताया है[1] कि यह बात सही नहीं है।

> साधारणतया काजी उपस्थित रहता है। भारत में काजी विवाह रजिस्टर का रखने वाला व्यक्ति मात्र है। उसका कृत्य केवल साक्ष्यिक है। यह समझना गलत है कि वह विवाह के अवसर पर दम्पत्ति के साथ होता है; विवाह तो पक्षकारों के बीच संविदा सम्पन्न होने पर विधि के प्रवर्तन द्वारा हो जाता है।
>
> तैयब जी के अनुसार[2] मुस्लिम विधि में यह अपेक्षित नहीं है कि विवाह के अवसर पर कार्य किसी विशेष अधिकारी द्वारा कराया जाए इसलिए विवाह कराने के लिए किसी व्यक्ति को एकाधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है। "रूढ़ि" से यह साबित होता है कि ऐसे मामलों में विवाह संविदाओं को लिखने और रजिस्टर करने का अनन्य अधिकार काजियों को देना इस दृष्टि से वास्तव में निरर्थक है कि—विवाह का लिखा जाना या रजिस्टर किया जाना आवश्यक नहीं है और किसी भी अधिकारी के बारे में यह मान्यता नहीं है कि उसे यह कार्य करने का अनन्य विशेषाधिकार प्राप्त है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस अधिनियम की विषयवस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 5 "विवाह-और विवाह विच्छेद————वे सभी विषय जिनके सम्बन्ध में न्यायिक कार्यवाहियों में पक्षकार इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले अपनी स्वीय विधि के अधीन थे" के अन्तर्गत आती है। समवर्ती सूची, प्रविष्टि 12, "साक्ष्य और शपथ————विधियों, लोक कार्यों और अभिलेखों को मान्यता" का भी उल्लेख किया जा सकता है।

कर्नाटक के एक मामले में[3] यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी नायब काजी की नियुक्ति या उसके हटाए जाने के लिए राज्य सरकार का पूर्व अनुमोदन आवश्यक नहीं है।

की जाने वाली कार्रवाई—इस अधिनियम के सम्बन्ध में प्रकाशित अनेक निर्णयों[4-6] से जिनमें से कुछ हाल ही के नर्णय हैं, यह प्रतीत होता है कि यह अधिनियम ऐसा नहीं है जिसका प्रयोग विरले ही किया गया है। ऐसी परिस्थितियों में उसके निरसन की सिफारिश करना संभव नहीं है।

13. जीवन बीमा (आपात उपबंध) अधिनियम, 1956 (1956 का 9)

इस अधिनियम द्वारा बीमा कम्पनियों का प्रबन्ध, जीवन बीमा का राष्ट्रीकरण पूरा होने तक, केन्द्रीय सरकार के एक नामनिर्देशिती में निहित किया गया है।

इस अधिनियम की विषयवस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 47, "बीमा" के अन्तर्गत आती है। यह अधिनियम अभी तक प्रवृत्त है यद्यपि धारा 18, निरसन और संशोधन अधिनियम, 1963 (1963 का 58) द्वारा निरसित कर दी गई है।

---

1. फ़ैजी, आउट लाइन्स आफ मोहामेडन ला (1974) पृष्ठ 92।
2. तैयब जी, मुस्लिम ला (1968) पृष्ठ 40, पैरा 151
3. वहाब सिद्दीकी बनाम कर्नाटक सरकार, ए० आई० आर० 1975, कर्नाटक 133।
4. (1972) 2 आन्ध्र वीकली रिपोर्टस 327, जिसका सारांश (1971-75) विवतवयूनियल (पंचवर्षीय) डाइजेस्ट, जिल्द 4, कालम 543 में दिया गया है।
5. वहाव सिद्दीकी बनाम कर्नाटक सरकार, ए आई आर 1975, कर्नाटक 133।
6. खाजी मोहम्मद बनाम आन्ध्र प्रदेश वक्फ बोर्ड, ए० आई० आर० 1975, आन्ध्र प्रदेश 116 (इसमें अधिनियम के उद्देश्य की विस्तार से चर्चा की गई है)।

निरसन की सिफारिश करने के कारण---अब जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण हो चुका है और यह प्रक्रिया काफी पहले पूरी हो चुकी है। अब इस अधिनियम की कोई आवश्यकता नहीं है। इस बात की जांच करने के बाद कि क्या अधिनियम की अब आवश्यकता है, इसे निरसित कर दिया जाना चाहिए[1]।

14. ओरियंटल गैस कम्पनी अधिनियम, 1857 (1857 का 5)

यह अधिनियम कुछ गैस उपक्रमों के लिए सीमित दायित्व सहित एक संयुक्त स्टाक कम्पनी का सृजन करता है।

अधिनियम की विषयवस्तु संघ सूची, प्रविष्टि 43 "व्यापार निगमों का------निगमन, विनियमन और परिसमापन" के अन्तर्गत आती है। यह उल्लेखनीय है कि इस विशिष्ट विधान के लिए, जिसमें निगमन की बात पर ध्यान केन्द्रित है, राज्य सूची, प्रविष्टि 25, "गैस और गैस संकर्म", उपयुक्त नहीं होगी।

निरसन की सिफारिश करने के कारण---सरकार इस बात पर विचार कर सकती है कि क्या इस अधिनियम और 1867 का पश्चात्वर्ती सदृश अधिनियम की अब कोई आवश्यकता रह गई है। वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करने के पश्चात् आगे की कार्यवाही की जाए[2]।

15. ओरियंटल गैस कम्पनी अधिनियम, 1867 (1867 का 11)

इस अधिनियम द्वारा ओरियंटल गैस कम्पनी को अपने कार्यक्षेत्र का कलकत्ता से परे विस्तार करने की अनुज्ञा देने की शक्ति केन्द्रीय सरकार को प्रदान की गई है।

निरसन की सिफारिश करने के कारण---कृपया "ओरियंटल गैस कम्पनी अधिनियम, 1857" शीर्षक के अन्तर्गत देखिए।

16. कर संदाय (सम्पत्ति अंतरण) अधिनियम, 1949 (1949 का 22)

इस अधिनियम में करों का संदाय किए बिना अंतरण के रूप में कुछ संव्यवहारों को प्रतिषिद्ध किया गया है। अधिनियम की धारा 2(1) विभाजन के पश्चात् की एक विशिष्ट अवधि के दौरान किए गए संव्यवहारों तक सीमित है। किन्तु धारा 2(11) यदि उसे शब्दशः देखा जाए तो, इस प्रकार सीमित नहीं है यद्यपि कदाचित विधानमण्डल का वैसा आशय था। धारा 2(11) (उन व्यक्तियों के बारे में जिन्हें अधिनियम लागू है) विनिश्चय का काम आय-कर प्राधिकारी, निष्क्रांत सम्पत्ति के अभिरक्षक या अन्य विनिर्दिष्ट प्राधिकारी पर छोड़ती है।

इस अधिनियम की विषयवस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 6, "कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति का अन्तरण, विलेखों और दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण के अन्तर्गत आती है।

की जाने वाली कार्रवाई---सरकार इस प्रश्न पर विचार कर सकती है कि क्या अधिनियम की सीमित परिधि को, जिसका आभास धारा 2 द्वारा होता है, देखते हुए अब इस अधिनियम की आवश्यकता है।

17. वृत्ति कर परिसीमा (संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम, 1949 (1949 का 61)

भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 142 (1) द्वारा[3], वृत्तियों आदि पर कर के अधिरोपण का उपबंध करने वाले कुछ प्रांतीय कानूनों को व्यावृत्त किया गया था

---

1. वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करके।
2. वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करने के पश्चात् ऐसा किया जाए।
3. भारत का संविधान, अनुच्छेद 276 से तुलना कीजिए।

किन्तु यह उपबंध किया गया था कि 31 मार्च, 1939 के पश्चात् (ऐसा कर अधिरोपित करने वाली) किसी विधि के अधीन किसी एक व्यक्ति की बाबत संदेय कर पचास रुपए प्रति वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही, धारा 142 (2) और परन्तुक द्वारा, पूर्व विद्यमान कर **पचास रुपए से अधिक दर पर भी विधिपूर्ण रूप से उद्गृहीत किए जाते रहने थे जब तक कि तत्प्रतिकूल कोई उपबंध फेडरल विधान मण्डल द्वारा न बनाया जाए।**

तत्कालीन मद्रास प्रेसिडेंसी में यह व्यापक मांग की गई थी कि प्रांतीय विधान के अधीन नगरपालिकाओं और स्थानीय बोर्डों द्वारा उद्गृहीत और मात्र आय पर आधारित वृत्ति कर की अधिकतम राशि पचास रुपए प्रति वर्ष होनी चाहिए। वृत्ति कर परिसीमा अधिनियम, 1941 (1941 का 120) ने उस मांग को प्रभावी किया और भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 142 की उपधारा (1) में अधिकथित सीमा का उन प्रांतों पर विस्तार किया जिनमें, धारा 142 की उपधारा (2) के परन्तुक के कारण पचास रुपए की सीमा पहले लागू नहीं थी और इस प्रकार इस विषय में सभी प्रांतों के लिए एकरूपता स्थापित की गई।

1949 का अधिनियम 1941 के अधिनियम के उपबंध का संशोधन और विधिमान्यकरण करता है।

की जाने वाली कार्रवाई---1941 का अधिनियम अब निरसित हो चुका है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या 1949 का अधिनियम जारी रहना चाहिए।

यह उल्लेखनीय है कि 1949 के अधिनियम की धारा 2, 1941 के अधिनियम की अनुसूची का संशोधन मात्र करती है, जब कि वर्तमान प्रयोजन के लिए इसकी धारा 3 अधिक महत्वपूर्ण है। वह धारा अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व वृत्तियों पर कर के अधिरोपण को विधिमान्य बनाती है और यह उपबंध भी करती है कि अब विधिमान्य किए गए कर के किसी भाग के प्रतिदाय के लिए कोई दावा किसी भी न्यायालय द्वारा ग्रहण नहीं किया जाएगा। सारतः यह एक विधिमान्यकरण उपबंध है।

विधिमान्यकरण अधिनियम---विधायी परिपाटी

इस संदर्भ में ध्यान देने की बात है कि भारत में सामान्य विधायी परिपाटी विधिमान्यकरण अधिनियमों को निरसित करने की नहीं रही है। अभी तक प्रवृत्त कुछ विधिमान्यकरण अधिनियमों के कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं।

(1) विवाह विधिमान्यकरण अधिनियम, 1892 (1892 का 2)।

(2) आर्य विवाह विधिमान्यकरण अधिनियम, 1937 (1937 का 19)।

(3) भाग ख राज्य विवाह विधिमान्यकरण अधिनियम, 1952 (1952 का 1)।

(4) विक्रय कर विधियां विधिमान्यकरण अधिनियम, 1956 (1956 का 7)।

(5) हिन्दू विवाह (कार्यवाहियों का विधिमान्यकरण) अधिनियम, 1960 (1960 का 19)।

(6) हिमाचल प्रदेश विधान सभा (गठन और कार्यवाहियां) विधिमान्यकरण अधिनियम, 1958 (1958 का 56)।

इस अधिनियम की विषयवस्तु राज्य सूची, प्रविष्टि 60, "वृत्तियों पर कर" के अन्तर्गत नहीं आती है बल्कि यह संघ सूची, प्रविष्टि 97, (अवशिष्टीय प्रविष्टि) के अंतर्गत आती हैं क्योंकि इस अधिनियम का आशय **संविधानिक स्वरूप के एक तत्कालीन प्रतिषेध के कल्पित अतिसंघन के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है।**

यदि आज भारत शासन अधिनियम, 1935 के विगत अतिलंघनों की व्यावृत्ति के लिए कोई अधिनियम पारित करना होता तो उचित विधायी प्रविष्टि, संघ सूची, प्रविष्टि 97 (अवशिष्टीय) होती।

की जाने वाली कार्रवाई---विधिमान्यकरण अधिनियमों को कानून-पुस्तक में बनाए रखने की विधायी परिपाटी को, जिसका अध्ययन ऊपर किया गया है, देखते हुए इस अधिनियम को चालू रहने देना होगा।

18. **लोक नियोजन (निवास विषयक अपेक्षा) अधिनियम, 1957 (1957 का 44)**

इस अधिनियम के प्रभावी उपबंधों का सारांश इस प्रकार है: धारा 2 उन पूर्व विधियों को निरसित करती है जिनमें सरकार के अधीन नियोजन की एक शर्त के रूप में किसी एक क्षेत्र में निवास की अपेक्षा अधिरोपित की गई थी। धारा 3[1] लोक नियोजन के लिए पात्रता की एक शर्त के रूप में किसी विशिष्ट क्षेत्र में निवास विषयक अपेक्षा अधिरोपित करने वाले विधान को अस्थायी संरक्षण प्रदान करती है। यह संरक्षण 15 वर्ष की अवधि तक सीमित था। वह अवधि अब बीत गई है किन्तु अधिनियम की धारा 2 अभी तक महत्वपूर्ण है क्योंकि वह पूर्व विधियों को निरसित करती है।

अधिनियम की विषयवस्तु संविधान के अनुच्छेद 16 (3) के साथ पठित अनुच्छेद 5 (क) (1) के आधार पर संसद् की अनन्य क्षमता के अंतर्गत आती है। संविधान के अनुच्छेद 16 (3) में उपबंध है कि इस अनुच्छेद की कोई बात संसद् को ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के या उनमें से किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी पद पर किसी वर्ग या वर्गों के नियोजन या नियुक्ति के संबंध में ऐसे नियोजन या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है। संविधान के अनुच्छेद 35 (क) (i) के अधीन (जहां तक वह तात्त्विक है)---

इस संविधान की किसी बात के होते हुए भी,---

(क) संसद् को शक्ति होगी और किसी राज्य के विधान मण्डल को शक्ति नहीं होगी कि वह---

(i) जिन विषयों के लिए अनुच्छेद 16 के खण्ड (3),------के अधीन संसद् विधि द्वारा उपबंध

कर सकेगी,

विधि बनाए------।

उच्चतम न्यायालय ने[2] अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 16 (4) में संविधान निवास विषयक अर्हता के लिए स्थान के रूप में संपूर्ण राज्य का उल्लेख करता है। यह सोचना असंभव है कि संविधान सभा जिलों, तालुकों, शहरों, नगरों या ग्रामों में निवास की बात सोचती थी। अतः लोक नियोजन (निवास विषयक अपेक्षा) अधिनियम, 1957 की धारा 3, जहां तक उसका संबंध तेलंगाना और अधिनियम के अधीन बनाए गए कुछ नियमों से है, संविधान के शक्ति बाह्य अभिनिर्धारित की गई थी।

की जाने वाली कार्रवाई---अधिनियम की धारा 2 का अभी भी महत्व है (जैसा कि ऊपर बताया गया है) इसलिए इस अधिनियम के निरसन की सिफारिश करना संभव नहीं है।

19. **लोकहित वाद विधिमान्यकरण अधिनियम, 1932 (1932 का 4)**

लोकहित वाद विधिमान्यकरण अधिनियम, 1932 की धारा 2 द्वारा यह उपबंध किया गया है कि जहां सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 91 और 92 में (ये धाराएं लोक

---

1. धारा 3 के विषय में निर्णयज विधि के लिए देखिए:

(क) राव बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, ए० आई० आर० 1970, एस० सी० 422।

(ख) आन्ध्र प्रदेश सरकार बनाम रेड्डी, ए० आई० आर०, 1973, एस० सी० 827।

2. राव बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, ए० आई० आर०, 1970, एस० सी० 422।

न्यूसेन्स और लोक न्यास संबंधी वादों के बारे में हैं)। विनिर्दिष्ट लोकहित के विषयों में से किसी विषय के संबंध में कोई वाद इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित है वहां ऐसे वाद का संस्थित किया जाना इस आधार पर अविधिमान्य किया गया नहीं समझा जाएगा कि ऐसे वाद के बारे में राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी उस संहिता की धारा 93 की अपेक्षानुसार प्राप्त नहीं की गई है।

इस अधिनियम की विषयवस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 13, "सिविल प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी विषय हैं जो इस संविधान के प्रारंभ पर सिविल संहिता के अन्तर्गत आते हैं——" के अन्तर्गत आती है।

की जाने वाली कार्रवाई——इस स्वरूप के अधिकतर वाद जिन्हें यह अधिनियम लागू होता है अर्थात् 1932 में (जब यह अधिनियम अधिनियमित हुआ था) लम्बित वाद अब तक निपटाए जा चुके होंगे। किन्तु पूर्ण निश्चितता से यह बात नहीं कही जा सकती है कि ऐसे सभी वाद अब तक निपटाए जा सके होंगे। अतः फिलहाल यह अधिनियम कानून-पुस्तक पर बना रह सकता है।

20. सार्वजनिक वकफ (परिसीमा विस्तारण) अधिनियम, 1959 (1959 का 29)

यह अधिनियम सार्वजनिक वक्फों की भागरूप स्थावर सम्पत्ति का कब्जा वहां फिर से प्राप्त करने के लिए जहां बेकब्जा करने की घटना 14 अगस्त, 1949 और 7 मई, 1954 के बीच हुई थी, वादों के संबंध में परिसीमा काल का विस्तार करता है। परिसीमा काल का मूलतः विस्तार 15 अगस्त, 1947 तक किया गया था किन्तु यह तारीख बार-बार बढ़ाई गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि निर्योग्यताओं और अन्य विशेष बातों के कारण जिनका साधारण परिसीमा विधि के अधीन प्रभाव परिसीमा का विस्तारण करना है, परिसीमा काल का वस्तुतः और आगे विस्तार हो सकता है।

इस अधिनियम की विषयवस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 10, "न्यास और न्यासी" तथा प्रविष्टि 23, "सिविल प्रक्रिया————परिसीमा————" के अंतर्गत आती है।

की जाने वाली कार्रवाई——यह संभव है कि ऐसे वाद जिन्हें यह अधिनियम लागू होता है, अब भी फाइल किए जा सकते हैं या वे लम्बित हैं। यदि ऐसा है तो इसके निरसन से अपरिहार्य संविवाद उठ सकते हैं। इसके अतिरिक्त, अनेक राज्यों ने (स्थानीय संशोधनों द्वारा) अवधि को बाद की तारीख तक बढ़ाया है। ऐसी परिस्थितियों में इस अधिनियम को निरसित करना उचित नहीं होगा।

21. विशेष अधिकरण (अनुपूरक उपबंध) अधिनियम, 1946 (1946 का 26)

इस अधिनियम में उपबंध है कि जहां दण्ड विधि संशोधन अध्यादेश, 1943 के अधीन स्थापित कोई विशेष न्यायालय का अस्तित्व समाप्त हो गया है, वहां उसे सत्र न्यायालय समझा जाएगा। स्पष्ट है कि यह तकनीकी उपबंध प्रश्नगत विशेष न्यायालयों की कार्यवाहियों के बारे में अपील, सम्पत्ति की निष्पादन विवरणी आदि और अन्य प्रासंगिक विषयों से बरतने के लिए आवश्यक समझा गया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस अधिनियम की विषयवस्तु संविधान समवर्ती सूची, प्रविष्टि 5, "दण्ड विधि और प्रक्रिया" तथा समवर्ती सूची, प्रविष्टि 11क, "न्याय प्रशासन" के अंतर्गत आती है।

निरसन की सिफारिश करने के कारण——दण्ड विधि संशोधन अध्यादेश, 1943 (जिसके साथ यह अधिनियम जुड़ा हुआ है) निरसित हो चुका है।[1] इसके अतिरिक्त, उस अध्यादेश

1. निरसन और संशोधन अधिनियम, 1957 (1957 का 36)।

के अधीन गठित विशेष अधिकरणों के विनिश्चयों से उत्पन्न होने वाले विषय अब तक व्यवहारिक रूप से निःशेष हो गए होंगे। अब यह अधिनियम, ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके संबंध में सही स्थिति का पता लगाने के बाद, निरसित किया जा सकता है[1]।

22. निष्क्रान्त निक्षेपों का अन्तरण अधिनियम, 1954 (1954 का 15)

भारत और पाकिस्तान के डोमिनियनों के स्थापित होने के परिणामस्वरूप दोनों देशों के बीच जनसंख्या का बड़े पैमाने पर प्रवासन हुआ था। भारत और पाकिस्तान ने विस्थापित व्यक्तियों या निष्क्रांत व्यक्तियों के निक्षेपों के अंतरण की रीति के संबंध में एक दूसरे के साथ एक करार किया। उपर्युक्त करार के अनुसरण में, संसद् ने पाकिस्तान के ऐसे निक्षेपों के अंतरण और भारत में ऐसे निक्षेपों के ग्रहण करने के लिए उपबंध करने हेतु विधान अधिनियमित किया। यह अधिनियम अभी तक प्रवृत्त है यद्यपि निरसन और संशोधन अधिनियम 1963 (1963 का 58) द्वारा धारा 18 निरसित कर दी गई थी।

अधिनियम में "निक्षेप" पद की परिभाषा इस प्रकार की गई है, कि उससे अभिप्रेत है—

(i) किसी सिविल या राजस्व न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही की बाबत उसकी अभिरक्षा में या उसके नियंत्रण के अधीन कोई जंगम सम्पत्ति;

(ii) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी प्रतिपाल्य अधिकरण के अधीक्षण के अधीन या उसकी अभिरक्षा में कोई जंगम सम्पत्ति;

(iii) किसी प्रबंधक की अभिरक्षा में या उसके नियंत्रण के अधीन कोई जंगम सम्पत्ति,

और इसके अंतर्गत कोई, प्रतिभूतियां, बीमा पालिसियां और परक्राम्य लिखतें आती हैं। "प्रतिभूतियों" के अंतर्गत शैयर, पर्णक, स्टाक, बंधपत्र, डिबेंचर, डिबेंचर स्टाक और वैसी प्रकृति की अन्य विपण्य प्रतिभूतियां" भी आती हैं। "विस्थापित" व्यक्ति ऐसा व्यक्ति है जो 1-3-1947 को या उसके बाद पाकिस्तान से भारत को चला गया है, और "निष्क्रांत" वह व्यक्ति है जो 1-3-1947 को या उसके बाद भारत से पाकिस्तान चला गया है।

इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय सरकार ने निक्षेपों का एक अभिरक्षक और उतने जितने अपेक्षित हैं, सहायक अभिरक्षक भी नियुक्ति करने की शक्ति ले ली है। अभिरक्षक को पाकिस्तान के किसी अधिकारी को जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, निक्षेपों का अन्तरण करने की शक्ति है। अभिरक्षक को पाकिस्तान के इस प्रकार विनिर्दिष्ट अधिकारी को निक्षेप के अभिलेखों का अंतरण करने की भी शक्ति है। यदि "निक्षेप" का अन्तरण किसी अन्य विधि के अधीन प्रतिषिद्ध है तो अभिरक्षक के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह अंतरण से पूर्व निक्षेप को धन में संपरिवर्तित कर ले।

अधिनियम में इसके विपरीत परिस्थिति के लिए अर्थात् पाकिस्तान से निक्षेपों की प्राप्ति के लिए प्रक्रिया और अभिरक्षक द्वारा दावेदारों को ऐसे निक्षेपों का संदाय करने में तत्पश्चात् अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया भी अधिकथित की गई है। यदि एक से अधिक दावेदार हैं और वे सभी संदाय या वितरण के तरीके पर सहमत नहीं हैं तो अभिरक्षक को शक्ति दी गई है कि वह (i) मामला, आरंभिक अधिकारिता वाले उस प्रधान सिविल न्यायालयों को निर्देशित कर दे जिसकी अधिकारिता के भीतर दावेदार या कम से कम उनका एक बड़ा भाग निवास करता है, और (ii) ऐसे न्यायालय की निक्षेपों का अन्तरण व्ययन के लिए कर दे।

इस अधिनियम की विषयवस्तु समवर्ती सूची, प्रविष्टि 41, "ऐसी सम्पत्ति की अभिरक्षा, प्रबन्ध और व्ययन जो विधि द्वारा निष्क्रान्त सम्पत्ति घोषित की जाए", संघ सूची, प्रविष्टि 10,

1. वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करने के पश्चात्।

"विदेश कार्य, सभी विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से संबंध होता है" तथा संघ सूची, प्रविष्टि 14, (सन्धियां करना और उनका कार्यान्वयन) के अंतर्गत आती है।

निरसन की सिफारिश करने के कारण––यह समझा जाता है कि अब तक ऐसे निक्षेप जिनको यह अधिनियम लागू हैं, अंतरित कर दिए गए होंगे या उनके संबंध में अंतिम रूप से कार्यवाही की जा चुकी होगी। अतः इस बारे में कि क्या ऐसे कोई निक्षेप अभी तक बचे हुए हैं जिनका निपटारा नहीं हुआ है, वस्तुस्थिति का पता लगाने के बाद[1] यह अधिनियम निरसित कर दिया जाना चाहिए।

अध्याय 4

कार्य-पत्र पर प्राप्त टिप्पणियां

प्रस्ताव के पक्ष में टिप्पणियां।

4.1 जैसा कि इस रिपोर्ट के प्रथम अध्याय में बताया जा चुका है,[2] विधि आयोग ने इस रिपोर्ट में चर्चित अधिनियमों के निरसन की बाबत जानकार व्यक्तियों की टिप्पणियां आमंत्रित करने के लिए इस रिपोर्ट की विषयवस्तु पर एक कार्य-पत्र परिचालित किया था। आयोग के पास टिप्पणियां भेजने के लिए अंतिम तारीख 30 नवम्बर, 1983 थी। इस रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए जाने की तारीख तक प्राप्त उत्तरों की संख्या नौ है। इनमें से दो उत्तर उच्च न्यायालयों से और बाकी सात उत्तर राज्य सरकारों के विधि विभागों से प्राप्त हुए हैं।

उक्त उच्च न्यायालयों में से एक उच्च न्यायालय विचाराधीन सभी केन्द्रीय अधिनियमों को निरसित किए जाने की आवश्यकता से सहमत है जब कि दूसरे उच्च न्यायालय का कहना है कि उसे इस बारे में कोई टिप्पणी नहीं करनी है[3]। राज्य सरकारों से प्राप्त सभी टिप्पणियों में इन अधिनियमों के निरसन के प्रस्ताव से सहमति व्यक्त की गई है[4]। राज्य सरकारों से प्राप्त इन टिप्पणियों में से दो टिप्पणियों में कुछ अतिरिक्त सुझाव दिए गए हैं या उनमें अतिरिक्त जानकारी दी गई है, जिनकी चर्चा अभी आगे की जाएगी[5]।

असंवैधानिक विधियां (पंजाब सरकार का सुझाव)।

4.2. विधि आयोग के कार्य-पत्र पर भेजे गए उत्तर में, पंजाब सरकार ने[6] सुझाव दिया है कि ऐसे कानूनी उपबंधों को भी निरसन योग्य समझा जाना चाहिए जो न्यायालयों द्वारा असंवैधानिक घोषित किए गए हैं। आयोग इस बात से अवगत है और उसने निरसित किए जाने वाले अधिनियमों की अपनी सूची तैयार करते समय इसे ध्यान में रखा है। यह बताना भी उपयोगी होगा कि जब कभी आयोग अलग-अलग अधिनियमों को विचारार्थ लेता है, तब उन कानूनी उपबंधों के जो संविधान के विरुद्ध पाए जाते हैं, निरसन या उनमें उपयुक्त संशोधन की सिफारिश करने की दृष्टि से संवैधानिक पहलू को भी ध्यान में रखा जाता है।

काजी अधिनियम, 1880 (महाराष्ट्र सरकार द्वारा भेजी गई सामग्री)।

4.3. महाराष्ट्र सरकार ने विधि आयोग के कार्य-पत्र पर अपनी टिप्पणी[7] में महाराष्ट्र राज्य में यथा प्रवृत्त काजी अधिनियम, 1880 के बारे में उपयोगी सामग्री भेजी है। यह उल्लेखनीय है कि आयोग इस अधिनियम के निरसन की सिफारिश नहीं कर रहा है[8]। राज्य सरकार द्वारा भेजी गई सामग्री से भी दर्शित होता है कि विधान की जो वर्तमान स्थिति है उसमें इस अधिनियम को निरसित नहीं किया जा सकता है।

---

1. वस्तुस्थिति का पता लगाने के पश्चात्।
2. पूर्वगामी पैरा 1.8।
3. विधि आयोग फाइल सं० एफ 2(11)/83 एल० सी०, क्रमशः क्रम सं० 7 और क्रम सं० 3।
4. विविध आयोग फाइल सं० एफ 2(11)/83–एल० सी०, क्रम सं० 4, 5, 6, 8, 9, 10 और 11।
5. आगामी पैरा 4.2 और 4.3।
6. विधि आयोग फाइल सं० एफ 2(11)/83-एल० सी०, क्रम सं० 5।
7. विधि आयोग फाइल सं० 2(11)/83–एल० सी०, क्रम सं० 8।
8. पूर्वगामी अध्याय 3, मद 12 (काजी अधिनियम, 1880)।

अध्याय 5

निष्कर्ष और सिफारिशों का सारांश

समीक्षा किए जाने वाले अधिनियम और प्रत्येक अधिनियम के बारे में जिस कार्रवाई के किए जाने का सुझाव दिया गया है, उसका सारांश।

5.1. पूर्वगामी अध्यायों में जो चर्चा की गई है उसके आधार पर उन अधिनियमों का जिन्हें हमने कुछ बातों के जिनका उल्लेख प्रत्येक अधिनियम विषयक चर्चा में किया गया है जहां वे लागू हैं, सत्यापन के पश्चात् निरसन के योग्य पाया है[1], निरसन वांछनीय प्रतीत होता है। सुविधा की दृष्टि से हम उन अधिनियमों की एक सूची जिनकी हमने समीक्षा की है और प्रत्येक अधिनियम की बाबत अपनी सिफारिश का सारांश नीचे दे रहे हैं।

समीक्षा किए गए अधिनियमों की सूची[2] और प्रत्येक अधिनियम की बाबत किए गए प्रस्ताव का सारांश[3]

1. प्रिवी काउंसिल उत्सादन अधिनियम, 1949 (1949 का संविधान सभा अधिनियम 5)—इस अधिनियम के तब निरसन की सिफारिश की गई है जब कि यह अभिनिश्चित किया जा सके कि इसके निरसन से कोई विधिक पेचीदगियां पैदा नहीं होती हैं (जैसे कि ब्रिटेन की संसद् के किसी अधिनियम द्वारा प्रिवी काउंसिल को प्रदत्त अधिकारिता का पुनरुज्जीवित होना, आदि)।

2. विधिक कार्यवाहियों का चालू रह जाना अधिनियम, 1948 (1948 का 38)—वस्तुस्थिति का पता लगाने के पश्चात् इस अधिनियम के निरसन की सिफारिश की गई है।

3. बन्दी आदान प्रदान अधिनियम, 1948 (1948 का 58)—इस प्रश्न की जांच करने के पश्चात् कि क्या अब इस अधिनियम की आवश्यकता है, इसके निरसन की सिफारिश की गई है।

4. फेडरल न्यायालय अधिनियम, 1937 (1937 का 25)—अधिनियम के निरसन की सिफारिश की गई है।

5. फेडरल न्यायालय (अपील अधिकारिता वृद्धि) अधिनियम, 1947 (1948 का 1)—इस अधिनियम के निरसन की सिफारिश की गई है।

6. गोवा, दमन और दीव (मत संग्रह) अधिनियम, 1966 (1966 का 38)—इस अधिनियम के निरसन की सिफारिश की गई है।

7. साधारण बीमा (आपात उपबंध) अधिनियम, 1971 (1971 का 17)—इस संबंध में स्थिति का पता लगाने के बाद कि क्या इस अधिनियम की आवश्यकता बनी हुई है, इसका निरसन किए जाने की सिफारिश की गई है।

8. भारतीय स्वतंत्रता पाकिस्तान न्यायालय (लम्बित कार्यवाही) अधिनियम, 1952 (1952 का 9)—अधिनियम के निरसन की सिफारिश की गई है)।

---

1. पूर्वगामी अध्याय 3।
2. अधिनियमों का क्रम अंग्रेजी के वर्णक्रमानुसार रखा गया है।
3. इनमें से कोई भी अधिनियम 15 फरवरी, 1984 तक निरसित नहीं किया गया था। यह बात कार्यालय में की गई जांच से पता चली है।

9. भारतीय निर्णय पत्रिका अधिनियम, 1875 (1875 का 18)---अधिनियम के निरसन की सिफारिश की गई है।

10. भारतीय राइफल्स अधिनियम, 1920 (1920 का 23)---अधिनियम के निरसन की सिफारिश की गई है।

11. औद्योगिक विवाद (बैंककारी कम्पनियां) विनिश्चय अधिनियम, 1955 (1955 का 41)---अधिनियम को निरसित करने की सिफारिश नहीं की गई है।

12. काजी अधिनियम, 1880 (1880 का 12)---अधिनियम को निरसित करने की सिफारिश नहीं की गई है।

13. जीवन बीमा (आपात उपबंध) अधिनियम, 1956 (1956 का 9)---इस संबंध में स्थिति का पता लगाने के बाद कि क्या इस अधिनियम की आवश्यकता बनी हुई है, इसका निरसन किए जाने की सिफारिश की गई है।

14. ओरियंटल गैस कम्पनी अधिनियम, 1857 (1857 का 5)---सरकार इस बात पर विचार कर सकती है कि क्या यह अधिनियम और उसी कम्पनी से संबंधित 1867 का पश्चात्वर्ती सदृश अधिनियम अब आवश्यक हैं। इस बारे में वस्तुस्थिति का पता लगाने के बाद आगे कार्रवाई की जाए।

15. ओरियंटल गैस कम्पनी अधिनियम, 1967 (1967 का 11)---ऊपर "ओरियंटल गैस कम्पनी अधिनियम, 1857" के अधीन देखिए।

16. कर संदाय (सम्पत्ति अन्तरण) अधिनियम, 1949 (1949 का 22)---सरकार इस बात पर विचार कर सकती है कि क्या इस अधिनियम की अब आवश्यकता है।

17. वृत्ति कर परिसीमा (संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम, 1949 (1949 का 61)---विधिमान्यकरण अधिनियमों के संबंध में विगतकाल में अपनाई गई विधायी परिपाटी को ध्यान में रखते हुए इस अधिनियम को कानून पुस्तक में बने रहने दिया जा सकता है। (विगत काल में विधिमान्यकरण अधिनियमों को कानून-पुस्तक में बने रहने दिया गया है)।

18. लोक नियोजन (निवास विषयक अपेक्षा) अधिनियम, 1957 (1957 का 44)---इस अधिनियम को निरसित करने से पेचीदगियां उत्पन्न हो सकती हैं इसलिए यह कानून-पुस्तक में बना रह सकता है।

19. लोकहित वाद विधिमान्यकरण अधिनियम, 1932 (1932 का 11)---यह अधिनियम फिलहाल कानून-पुस्तक में बना रह सकता है।

20. सार्वजनिक वक्फ (परिसीमा विस्तारण) अधिनियम, 1959 (1959 का 29)---इस अधिनियम को निरसित करना उचित नहीं है।

21. विशेष अधिकरण (अनुपूरक उपबंध) अधिनियम, 1946 (1946 का 29)---इस अधिनियम के बारे में उन कुछ तथ्यों की जिनकी चर्चा ऊपर की गई है, वस्तुस्थिति का पता लगाने के बाद इस अधिनियम को निरसित किया जा सकता है।

22. निष्क्रांत निक्षेपों का अंतरण अधिनियम, 1954 (1954 का 15)––वस्तुस्थिति का पता लगाने के बाद इस अधिनियम को निरसित किया जा सकता है।

(के० के० मैथ्यू)
अध्यक्ष

(जे० पी० चतुर्वेदी)
सदस्य

(डा० एस० बी० राव)
सदस्य

(पी० एम० बक्षी)
अंशकालिक सदस्य

(वेपा पी० सारथी)
अंशकालिक सदस्य

(ए० के० श्रीनिवासमूर्ति)
सदस्य-सचिव

तारीख 19-3-1984

भासमुको––से-1––5 एम/आफ एलजे/अण्ड सीए/एनडी/84–23-1-86–250.

PLD-92-XCVI (H)
250-1984 (DSK-II)

विक्रेता—(1) प्रकाशन व विक्रय-प्रबन्धक, विधि साहित्य प्रकाशन, भारत सरकार, भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001

(2) प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 054